© 2009 IJSRST | Volume 1 | Issue 1 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

प्राचीन भारत में विवाह एवं शिक्षा

(द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से तृतीय शताब्दी ई0 तक)

अजिता ओझा
शोध छात्रा
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

मनुस्मृति के अनुसार सन्तानोत्पत्ति और धर्म कृत्य विवाह के प्रमुख उद्देश्य हैं। संतानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण और धर्मकृत्य द्वारा देवऋण से मुक्ति प्राप्त होती है।[1] इसी प्रकार के विचार याज्ञवल्क्य स्मृति में भी व्यक्त किए गए हैं।[2] परन्तु इन तीनों उद्देश्यों में काम का स्थान सबसे अन्तिम है और इनमें से यदि किसी का भी त्याग किया जाए तो काम का सर्वप्रथम परित्याग किया जाना चाहिए। पुत्रोत्पत्ति का महत्व इस विश्वास में निहित था कि पुत्र ही पिता को नरक में गिरने से बचाता है। मनु ने वर और कन्या की आयु क्रमशः 30 और 12 वर्ष तथा 24 और 8 वर्ष प्रतिपादित किया है।[3] इसी प्रकार महाभारत के अनुशासन पर्व में 30 और 10 तथा 12 और 7 वर्ष दी है।[4] अधिकतर धर्मशास्त्रकारों के अनुसार कन्या की आयु वर की आयु से कम होनी चाहिए। समाज में ऐसी कन्याओं से विवाह करना उचित माना जाता था जिसके भाई हों।[5] मनु तथा याज्ञवल्क्य दोनों ने वर के चुनाव में सतक्रता बरतने की बात कही है। मनु ने लिखा कि चाहे कन्या अविवाहित रह जाय, लेकिन गुणहीन वर को उसे कदापि न दे[6] और यदि कुल तथा आचार में श्रेष्ठ एवं सुन्दर वर मिल जाय तो विवाह की वय न प्राप्त करने पर भी पिता ब्राह्मविधि से कन्यादान कर दे।[7] याज्ञवल्क्य तो यहाँ तक कहते हैं कि कन्या एक ही बार (विवाह में) दी जाती है, परन्तु यदि पहले वर से अच्छा कोई दूसरा वर मिल जाय तो दी हुई कन्या का भी हरण कर लिया जाय।[8] उन्होंने परिवार की प्रसिद्धि और आनुवांशिक रोगों से मुक्त वर पर बल दिया है।[9] किन्तु कन्या के लिए भी उसकी सुंदरता और अच्छे लक्षणों से युक्त होने पर सभी ग्रंथों में बहुत बल दिया गया है।[10] सगोत्र, सप्रवर और सपिण्डी (पिता की सात पीढ़ी और माता की पाँच पीढ़ी के रक्त को सपिण्ड मानते थे)[11] कन्या से विवाह न करने के नियम अनिवार्य थे।[12] ऐसे विवाह श्रेष्ठ नहीं माने जाते थे। मनु तथा याज्ञवल्क्य दोनों ने ही अपनी स्मृतियों में 8 प्रकार[13] के विवाहों का वर्णन किया है जिसमें प्रथम चार प्रशस्त (मान्य) और अन्तिम चार अप्रशस्त (अमान्य) बताये गये हैं।[14] ये 8 प्रकार हैं :–

1. **ब्राह्म विवाह**– विद्वान तथा आचारवान वर को स्वयं बुलाकर, वस्त्र तथा अलंकार से विभूषित और पूजित कर कन्यादान ब्राह्म विवाह है।[15] यह सबसे शुद्ध और विकसित विवाह प्रकार था। राजबली पाण्डेय का कथन है कि यह ब्राह्मण के उपयुक्त माना जाता था, इसलिए इसे ब्राह्म विवाह कहा गया।[16] स्मृतियों में इसे सर्वाधिक प्रतिष्ठापूर्ण माना गया, क्योंकि यह शारीरिक बल, कामासक्ति, किसी प्रकार की शर्त एवं धनलोलुपता से रहित होता था। इसमें सामाजिक मर्यादा का पूर्णरूपेण पालन होता था और धार्मिक मान्यताओं का भी ध्यान रखा जाता था। राजबली पाण्डेय ऋग्वेद में

वर्णित सोम के साथ सूर्या के विवाह[17] को इसका आदिप्ररूप (prototype) मानते हैं।[18] भारत में यह विवाह प्रकार आज भी सबसे अधिक प्रचलित है।

2. **दैव विवाह**– (ज्योतिष्टोम आदि) यज्ञ में सम्यक प्रकार से कर्म करते हुए ऋत्विक् को वस्त्राभूषण से अलंकृत कन्या का दान दैव विवाह कहलाता है।[19] बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार कन्या यहाँ (यज्ञ के अवसर पर) दक्षिणा के रूप में दी जाती थी।[20] यह भी कहा जाता है कि चूँकि यह दक्षिणा दैव यज्ञ के अवसर पर दी जाती थी, इसलिए इसे दैव विवाह की संज्ञा दी गई।

3. **आर्ष विवाह**– यह ब्राह्म विवाह से निम्न स्तर का था क्योंकि इसमें कन्या का पिता वर की सेवाओं को ध्यान में रखकर उसे कन्या प्रदान करता था जब कि ब्राह्म विवाह में विशुद्ध रूप से कन्या का दान किया जाता था।[21] वर से एक जोड़ी गो मिथुन (एक गाय तथा एक बैल अथवा दो जोड़ी अर्थात् दो गाय तथा दो बैल) लेकर विधिपूर्वक कन्यादान करना आर्ष विवाह है।[22] याज्ञवल्क्य भी वर से दो गाएँ लेकर कन्या प्रदान करने को आर्ष विवाह की संज्ञा देते हैं।[23] आश्वलायन, बौधायन और आपस्तम्ब भी वर से गोमिथुन लेकर विवाह की परम्परा को आर्ष विवाह कहा है।[24] लेकिन यह कन्या का मूल्य नहीं वरन् दान मान, जाता था। मनु स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वर द्वारा अर्ष (प्रीति) पूर्वक दिये गये इस धन को यदि माता–पिता या परिवार वाले स्वयं नहीं लेते हैं (कन्या को ही दे दे हैं) तो वह (धन ग्रहण) कन्या विक्रय नहीं है, वह तो केवल उस पर अनुकम्पा मात्र है।[25]

4. **प्राजापत्य विवाह**– 'तुम दोनों एक साथ धर्म (गृहस्थ धर्म) करो, 'कहकर, पूजा कर पिता द्वारा कन्यादान प्राजापत्य विवाह है।

5. **असुर विवाह**– कन्या के लिए परिवार वालों (पिता, चाचा, भाई आदि) को तथा कन्या को यथाशक्ति द्रव्य देकर अपनी इच्छा से कन्यादान लेना असुर विवाह है। मनु ने ऐसे विवाह की निन्दा करते हुए कहा है कि शूद्रों को भी अपनी कन्या के बदले धन नहीं लेना चाहिए।[26]

6. **गन्धर्व विवाह–** कन्या तथा वर द्वारा परस्पर प्रेम होने पर अपनी इच्छा से विवाह गन्धर्व विवाह है। तत्कालीन समाज में ऐसे विवाहों का प्रचलन बहुत कम देखने को मिलता है। कई बार कन्या स्वयं ऐसे विवाह से इंकार कर देती है जिसका उदाहरण हमें महाभारत में मिलता है। वहाँ तापती नामक कन्या ने राजा संवरण के विवाह प्रस्ताव को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि वह स्वतन्त्र नहीं है, उसके पिता उसके संरक्षक हैं, उन्हीं से प्रस्ताव कीजिए।[27]

7. **राक्षस विवाह–** कन्या के परिवार वालों को मार कर अथवा घायल कर, घर के दरवाजे आदि तोड़कर, कन्या का घर से बलात अपहरण करना राक्षस विवाह है। महाभारत में गन्धर्व और राक्षस विवाह को क्षत्रियों का धर्म कहा गया है।[28]

8. **पैशाच विवाह–** सोती हुई, मद्य से प्रमत्त (मद्यपान करने से मतवाली) तथा असावधान (शील की रक्षा से रहित अथवा पागल) कन्या के साथ छलपूर्वक फुसलाकर किया गया विवाह पैशाच विवाह है।

मनु तथा याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मणों के लिए प्रथम चार ब्राह्म, दैव, आर्ष तथा प्राजापत्य को धर्म विवाह माना है तथा विद्वान ब्राह्मणों के लिए इन्हें विहित बताया है। शेष विवाहों को अधर्म विवाह[29] की श्रेणी में रखते हुए क्षत्रियों के लिए अन्तिम चार (असुर, गन्धर्व, राक्षस तथा पैशाच), एवं वैश्य तथा शूद्र के लिए राक्षस को छोड़कर शेष तीन अर्थात् आसुर, गांधर्व तथा पैशाच धर्मानुकूल (अनुमन्य) माना है।[30] धर्म और अधर्म दोनों प्रकारों के विवाहों[31] में धर्म विवाह को व्यवस्थाकारों द्वारा विशेष सम्मान देते हुए इसका प्रभाव सन्तान पर भी बताया गया है। मनु के अनुसार धर्म विवाहों की सन्तान गुणी, प्रशंसनीय और वैदिक ज्ञान में प्रवीण होती है और अधर्म विवाह की सन्तानें क्रूर, झूठी और ब्राह्मण धर्म की विरोधी होती हैं।[32] मनु तथा याज्ञवल्क्य दोनों ने

धर्म विवाह ब्राह्म, दैव, आर्ष तथा प्राजापत्य से उत्पन्न पुत्र द्वारा क्रमशः पितरों की (पीछे की) ओर आने वाली 21,14,16 और 12 पीढ़ी के लोगों को पाप मुक्त करने वाली बताया है।[33] श्राद्ध आदि धार्मिक क्रियाओं में भी धर्म विवाह वाली पत्नी को विशेष अधिकार दिये गये थे। उसके मरने पर पति स्वयं चावल का पिण्ड देता था।[34]

धर्म्य और अधर्म्य विवाहों का स्पष्ट प्रभाव स्त्रीधन पर भी पड़ता था। याज्ञवल्क्य का मत था कि यदि धर्म्य विवाह हुआ हो और उसकी कोई सन्तान न हो तो धन पति को मिलना चाहिए। परन्तु अधर्म्य विवाह में ये धन पिता को दिया जाए।[35] स्पष्ट है कि समाज में अधर्म्य विवाह को सम्माननीय दृष्टि से नहीं देखा जाता था। लेकिन इस काल में ऐसे अधर्म्य विवाहों का प्रचलन अवश्य था। संभवत यही कारण था कि मनु ने पैशाच और आसुर विवाह को शिष्ट लोगों के लिए निषिद्ध तो माना, पर बलात स्थापित किए सम्बन्धों के बाद धार्मिक क्रियाओं के साथ कन्या को अपनी पत्नी बनाने की व्यवस्था दी है। यदि वह व्यक्ति उपस्थित न हो तो उसे दण्डित करने तथा कन्या का विवाह किसी अन्य से करने का विधान किया है।[36] याज्ञवल्क्य ने भी इसका समर्थन किया है।[37] यद्यपि मनु तथा याज्ञवल्क्य दोनों ने पति को बहुविवाह की इजाजत दी है पर इसमें भी स्वर्ण विवाह को ही श्रेष्ठ माना जाता था।[38] समसामयिक संक्रमणकालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अनुलोम विवाह की इजाजत जरूर दी गई थी पर, इसमें भी एक ही पिता से उत्पन्न सन्तानों को उनकी माताओं के वर्णों के अनुसार ही सम्पति विभाजन होता था। प्रतिलोम विवाह[39] को सवर्था वर्जित माना जाता था और इससे उत्पन्न सन्तानों को भी समाज में गर्हित समझा जाता था।

शिक्षा :

शिक्षा को कितना महत्व दिया जाता था, यह इस बात से समझा जा सकता है कि मनु ने विद्या को वित्त, बन्धु, वय, कर्म और धन में सबसे ऊँचा स्थान दिया है।[40] केवल योग्य और शिक्षा के लिए उत्सुक विद्यार्थियों को ही शिक्षा दी जाती थी। जो विद्यार्थी गुरु के अनुशासन में नहीं रहते थे या पढ़ाई पर ध्यान नहीं देते थे, उन्हें गुरु आश्रम से निकाल देता था। उन्हें पतंजलि ने 'खट्वारुढ़' अर्थात खाट पर पड़ा रहने वाला कहा है।[41] जो विद्यार्थी बार–बार अध्यापक बदलते थे उन्हें, पतंजलि ने 'तीर्थकाक' कहा है। पतंजलि ने निन्दनीय विद्यार्थियों के लिए कुछ अन्य विशेषण दिए हैं जैसे कि कन्याओं के कारण दाक्ष के शिष्य बनने वाले 'कुमारी दाक्ष', भिक्षा का माल हड़पने की इच्छा से बने शिष्य 'भिक्षा माणव', भात खाने की इच्छा से बनने वाले पाणिनी के शिष्य 'ओदन पाणिनीया', घी के लिए बने शिष्य 'घृत–राढ़ीया' और कम्बल के लिए शिष्यत्व ग्रहण करने वालों के लिए 'कम्बल चारायणीयाः'।[42] किसी ऐसे प्रसिद्ध अध्यापक जिसके पास सैकड़ो मील से विद्यार्थी पढ़ने आते थे, का शिष्यत्व ग्रहण करने वाले विद्यार्थी के लिए पतंजलि ने 'यौजन शातिक' पद प्रयुक्त किया है।[43] जो अध्यापक जीवन निर्वाह के लिए वेद–वेदांग पढ़ाते थे, वे 'उपाध्याय' कहलाते थे,[44] जो बिना शुल्क लिए वेद, कल्पसूत्र और उपनिषद पढ़ाते थे वे 'आचार्य' कहलाते थे।[45] शिष्य आचार्य को शिक्षा समाप्ति पर गुरु दक्षिणा के रूप में भूमि, सुवर्ण, गाय, घोड़ी, छतरी, जूते, अनाज, शाक या वस्त्र देते थे।[46] शुल्क लेने वाले अध्यापक और शुल्क देने वाले शिष्य का समाज में आदर नहीं था। उसे श्राद्ध भोजन का निमंत्रण भी नहीं दिया जाता था।[47]

शिक्षा का मतलब केवल बौद्धिक उन्नति भर न था बल्कि सम्पूर्ण चारित्रिक और आध्यात्मिक उन्नति के द्वारा छात्र के सर्वांगीण विकास से था।[48] मनु ने ज्ञान को तीन श्रेणियों में विभक्त किया था– लौकिक (सांसारिक, व्यावाहारिक ज्ञान), वैदिक (वेदों का ज्ञान) और आध्यात्मिक (पारलौकिक, दार्शनिक ज्ञान)।[49] मनुस्मृति में छात्रों के पाठ्यक्रम के रूप में सम्पूर्ण वैदिक साहित्य[50] सहित उसके छः अंग[51], धर्मसूत्र[52] या स्मृति, इतिहास[53] (परम्परा से प्रचलित पौराणिक कथा), आख्यान[54] (कथायें), पुराण,[55] हेतुशास्त्र[56] (भाषा विज्ञान), आन्वीक्षिकी[57] (तक्र और तत्त्व मीमांसा), वेदान्त,[58] मीमांसा,[59] दण्डनीति[60] (शासन विज्ञान)

आदि। याज्ञवल्क्य[61] ने भी विद्या[62] की चौदह शाखाओं की चर्चा की है जिसमें चार वेद, छः वेदांग, पुराण, न्याय (तक्र), मीमांसा और धर्मसूत्र सब कुछ शामिल था। उन्होंने द्विज विद्यार्थियों को आदेश दिया था कि प्रतिदिन वह यथासामर्थ्य वाक्यायिका (वाक्य विन्यास,) निराष्मसी (वीरों का स्तुति गान)[63], ग्रंथिका या गाथा (महाकाव्यों के श्लोक),[64] इतिहास और पुराण पढ़ना चाहिए।

मनु[65] तथा याज्ञवल्क्य[66] ने शासकों के लिए भी दण्डनीति और वार्ता (अर्थशास्त्र) के साथ ही त्रयी (तीनों वेदों), आन्वीक्षिकी आदि का अध्ययन प्रस्तावित किया है। उल्लेखनीय है कि मनु तथा याज्ञवल्क्य द्वारा उद्धृत लगभग सभी पाठ्यक्रम हमें बौद्ध साहित्य और मिलिन्दपन्हो[67] में भी पढ़ने को मिलते हैं। मिलिन्दपन्हों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण विद्यार्थी उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त कोशकला, छंदशास्त्र, स्वर विज्ञान, श्लोक व्याकरण, निरुक्त (व्युत्पत्तिशास्त्र), ज्योतिष, शरीर पर मांगलिक चिह्नों का विज्ञान, शकुन विज्ञान, स्वप्नों और ग्रहों के शकुनों का अर्थ निकालने का विज्ञान आदि विषयों का भी अध्ययन करते थे। इसी प्रकार क्षत्रियों के लिए हाथियों, घोड़ों, रथों को चलाना, धनुष और खांडा, युद्धकला, दस्तावेजों और मुद्राओं के विषय में भी पूरा ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था।[68] दिव्यावदान से हमें ज्ञात होता है कि वैश्य विद्यार्थी लेखन कला, गणित, मुद्राशास्त्र, ऋण निधि, मणि परीक्षा और अश्व–हस्ति विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करते थे।[69] मनु द्वारा भी लगभग इन्हीं विषयों का अध्ययन वैश्यों के लिए प्रस्तावित था।[70]

यद्यपि वेदों का अध्ययन इस काल में भी पूर्ववर्ती काल की तरह ही केवल द्विजों के लिए प्रस्तावित था,[71] परन्तु महाभारत के शांति पर्व में चारों वर्णों के व्यक्तियों को वेद प्रवचन सुनने का अधिकार दिया गया था।[72] धर्म प्रवक्ता शूद्रों[73] और पंक्तिदूषित ब्राह्मणों में शूद्र शिष्यों का उल्लेख[74] किया गया है। पहली बार इस काल में मनु द्वारा ज्ञानी शूद्रों से भी शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है[75] जो इस बात की ओर संकेत है कि इस काल में कुछ शूद्र अवश्य शिक्षा ग्रहण करते थे और अध्यापक के रूप में वेदों के अतिरिक्त अन्य विषयों को पढ़ाते थे। पर यह सब केवल अपवाद के रूप में ही समाज में विद्यमान रहा होगा, सभी शूद्र ऐसा नहीं कर सकते थे।[76] यद्यपि हापकिंस जैसे कुछ विद्वान महाभारत के शांति पर्व में शूद्रों को जो वेद सुनने का अधिकार दिया गया था उसके आधार पर उन्हें अपनी ज्ञान पिपाशा की शान्ति के लिए उसे पढ़ने के अधिकार का मत व्यक्त करते हैं।[77] परन्तु इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि शूद्रों को द्विजों के समान वेदों को पढने का अधिकार प्राप्त था क्योंकि यह निष्कर्ष केवल महाभारत के कतिपय श्लोकों के आधार पर निकाला गया है। दूसरे, अन्यत्र किसी भी शास्त्रीय साक्ष्य द्वारा इसका समर्थन होता नहीं दिखता है जिससे यह कहा जा सके कि इस काल में शूद्रो को द्विजो की तरह शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। यदि इस मत को मान भी लिया जाए तो सम्भवतः यह उन्हीं शूद्रों को प्राप्त हुआ होगा जो आर्थिक दृष्टि से वैश्यों के समकक्ष पहुँच गये थे। निश्चित रूप से ऐसा वर्ग जो आर्थिक रूप से उन्नत रहा हो और ज्ञान पिपासु भी, बहुत सीमित संख्या वाला रहा होगा। अतः इसे शूद्र समाज में अपवाद के रूप में ही देखा जा सकता है।

यद्यपि इस काल में स्त्रियों के उपनयन[78] संस्कार की समाप्ति और विवाह योग्य आयु में कमी[79] के कारण स्त्रियों के शैक्षिक स्तर में महत्वपूर्ण गिरावट आयी तथापि, इस काल में हमें कुछ ऐसे साहित्यिक और पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त होते हैं जिससे हमें उच्च कुल की, संभ्रान्त तथा शाही परिवार की कन्याओं के शिक्षा प्राप्त करने की जानकारी मिलती है।[80] पतंजलि ने अपने महाभाष्य में 'औदमेधाः' शब्द का प्रयोग 'औदमेध्या' नामक अध्यापिकाओं के छात्र के लिए किया है।[81] इसी प्रकार महाभाष्य में मीमांसा दर्शन पढ़ने वाली कन्याओं का स्पष्ट उल्लेख है। काशकृत्स्न मीमांसा में पारंगत ब्राह्मणी को 'काशकृत्स्ना' तथा आपिशल व्याकरण में पारंगत ब्राह्मणी को 'आपिशला' पुकारा गया है।[82] इसी प्रकार कुछ ऐसी नारियाँ जो शिक्षा, स्वाध्याय, वैराग्य और तप में सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर देती थीं उनके लिए 'कुमारश्रमणा', 'कुमारप्रव्रजिता', 'कुमाराध्यापिका',

'कुमारतापसी' और 'कुमारपण्डिता' शब्दों का महाभाष्य में प्रयोग करते हुए इन देवियों को समाज का गौरव कहा गया है।[83] इन समस्त उदाहरणों से सिद्ध होता है कि महिलाओं में न केवल शिक्षा का ही प्रचार था वरन् वे विविध विषयों की विशेषज्ञ भी थीं। लेकिन ये स्त्रियाँ समाज में उसी तरह गिनी–चुनी थीं जैसे शासकों में गौतमी पुत्र शातकर्णी की पत्नी नागनिका जिसने अपने ज्येष्ठ पुत्र वेदश्री की ओर से शासन संभाला था या हाल की पत्नी मालवती जो संस्कृत की विदुषी महिला थीं। ये सभी शाही परिवारों या अभिजात कुलों से तालुक रखती थीं जिन्हें आर्थिक और सामाजिक दोनों तरह की सुरक्षा प्राप्त थी।

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. मनु., 9.28
2. याज्ञ., 1. 78
3. मनु., 9 .94
4. महाभारत, अनुशासन पर्व, 44 . 14
5. मनु., 3.11 ; याज्ञ., 1.53
6. काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
   न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्।। – मनु., 9.89
7. मनु., 9.88
8. दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत्।। – याज्ञ., 1.65
9. याज्ञ., 1.54 – 55
10. मनु., 3.4; याज्ञ., 1.52
11. याज्ञ., 1.53
12. असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितु :।
    इत्येतामनुगच्छेतु तं धर्मम् मनुरब्रवीत्।। – महा., 13.44.18; मनु., 3.5
13. ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
    गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमाः। – मनु., 3.21 तथा 3.22–24; याज्ञ., 1.58 – 61
14. मनु., 3.24–25
15. वही, 3.27; याज्ञ., 1.58
16. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कारज, पृ. 169
17. ऋग्वेद, 10.85
18. पाण्डेय, राजबली, पूर्वो, पृ. 169–70
19. यज्ञे तु विततते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
    अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्म प्रचक्षते।। – मनु. ,3.28; यज्ञस्य ऋत्विजे दैव...। याज्ञ., 1.59; ऋत्विजे विततते कर्मणि दद्यातलंकृत्य स दैवः। – आश्वलायन गृह्य सूत्र, 1.6
20. दक्षिणासु दीयमानास्वन्तर्वेदि यदृत्विजे स दैवः।
21. पाण्डेय, राजबली पूर्वो., पृ. 169
22. एकं गो मिथुंन द्वे वा वरादादाय धर्मतः।

कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते।। – मनु., 3.29

23. आर्षस्तु गोद्वयम्। याज्ञ., 1.59
24. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कारज, पृ. 168
25. यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः।
अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं न केवलम्।। मनु., 3.54; गोमिथुन की परम्परा को दान या विक्रय मानने वाले विभिन्न मतों की जानकारी हेतु, देखिए, पाण्डेय, राजबली, वही, पृ.168.
26. मनु., 9.98
27. अतो दत्तापित्रा त्वां भद्रे न विवाहाभ्यहम्, महा., 1.81. 26
28. गान्धर्वराक्षसे क्षत्रे धम्यौ तौ मा विशांकिताः, महा., 13.44.
29. मनु., 3. 24– 25; महाभारत, अनु. 44–9
30. मनु., 3.23
31. मनु., 3.24
32. मनु., 3.36–37
33. मनु., 3.37–38; याज्ञ. 1.58–60
34. काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, खंड –4, पृ. 533
35. अप्रजस्त्रीधनं भर्तुर्ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वापि।
दुहितृणां प्रसूता चेच्छेषेषु पितृगामितत।। – याज्ञ. 2.145
36. मनु., 8.366
37. याज्ञ., 2.287–288
38. मनु., 3.4–5
39. मनु., 3.14
40. मनु., 2.136487.
41. महाभाष्य, 24.32; 3.1.26 (2) पर
42. वही, 2. 1. 41 ; 1. 1. 73 (6) पर
43. महाभाष्य., 5.1.74 (2) पर
44. मनु., 2.141
45. वही, 2.140
46. वही, 2.246
47. वही, 3.156; याज्ञ., 3.230
48. पाण्डे, जी.सी. फाउन्डेशन्स ऑव इण्डियन कल्चर, वाल्यूम II, पृ. 150; मनु., 12.89–90
49. मनु., 3.156
50. वही., 2.10.140; 4.100; 5.29; 11.33; 7.111 आदि
51. वही., 2.141; 3.185 आदि
52. वही., 2.10; 3.332 आदि

53. मनु., 3.232
54. वही., 3.232
55. वही., 3.232
56. वही, 2.11
57. वही, 8.43
58. वही, 2.160
59. वही, 12.111
60. वही, 7.43
61. काणे, पी.बी. धर्मशास्त्र का इतिहास, वाल्यूम II पार्ट I] पृष्ठ 355
62. विटरनित्ज, हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, वाल्यूम I, पृ. 226; यू. एन. घोषाल, स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृष्ठ. 8
63. वही.
64. वही.
65. मनु., 8.43
66. याज्ञ., 1.311
67. राजा मिलिंद के प्रश्न अनुवादित टी डब्लू रिज डेविड्स, एस.बी.ई., वाल्यूम XXXV] पृ. 6, 247
68. मिलिदपन्ह, 1.9; 4.3, 26
69. दिव्यावदान, 26. 99–100
70. मनु., 9. 329–332
71. मनु., 2.165
72. श्रावयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः।। – महाभारत, 12.314.45
73. मनु., 8.21,272
74. मनु., 3.156
75. मनु., 2.238; महाभारत, 12.306.85
76. हापकिंस, द रिलिजन्स ऑव इण्डिया, पृ. 425
77. प्राप्ज्ञानं, शूद्रादपि नीचाद्भीक्ष्णम्। महाभारत, 12.306.85
78. शर्मा., आर.एस., शूद्रज इन ऐशिएन्ट इण्डिया, पृ. 23
79. वही
80. अल्टेकर, ए.एस., एजुकेशन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, 1975, पृ. 219
81. औदमेध्याश्छात्रा औदमेधाः, महाभाष्य, भाग 2, पृष्ठ 229; आपिशलमधीते ब्राह्मणी आपिषला ब्राह्मणी। महाभाष्य, भाग 2, पृष्ठ 205

82. काशकृत्सिना प्रोक्तां मीमांसा काशकृत्सनी। काशकृत्स्नीमधीते काशकृत्स्ना, ब्राह्मणी अत्र प्राप्नोति। महाभाष्य, भाग 2, पृष्ठ 206

83. अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, पतंजलि कालीन भारत, पृ. 179।